P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-7* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं समाजवाद

सारांश

भारतीय कांग्रेस का सबसे खतरनाक पक्ष उसका वैचारिक खुलापन था। चूंकि यह किसी वर्ग विशेष की पार्टी नहीं थी। अतः यह वैचारिक रूप से विषय अवयवी थी। इस पार्टी में कई विचारधारा, विभिन्न राजनीतिक सोच रखने वाले लोग शामिल थे। कांग्रेस ने अपना सदस्य बनने के लिए किसी प्रकार के वैचारिक पूर्वाग्रह को अर्हता के रूप में नहीं लादा। गांधी ने भी कभी कांग्रेस पर अपने वैचारिक या नीतिगत एकाधिकार की बात नहीं की। हम कई तरह की वैचारिक उपधाराओं का अस्तित्व इसमें पाते हैं– साम्यवादी, समाजवादी आदि। इसी के कारण कांग्रेस नई विचारधारा को अपनाने के प्रति भी तत्पर रहती थी।

मुख्य शब्दः बुर्जवा, पूंजीपती, दक्षिणपंथी, प्रजातांत्रिक मूल्य, साम्यवाद, मार्क्सवाद।

प्रवीण कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
एस. एन. महिला महाविद्यालय,
बगवाडा, आमेर,
जयपुर, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी शुरूआत से ही जनसमर्थक रही। इन्होंने हमेशा जनता के हितों के प्रति अपनी संवेदनशीलता प्रदर्शित किया एवं जनता की सहभागिता को बढ़ाने का प्रयास किया। यह भी एक हद तक समाजवादी विचारों से साम्यता का उदाहरण है जिसके कारण इसको समाजवादी रूख प्रदान करना आसान हो गया। आंदोलन का वर्ग चरित्र भी ऐसा नहीं था कि इस पर किसी वर्ग विशेष का प्रभुत्व माना जाए अगर कुछ था भी तो विचारधारात्मक प्रभुत्व था। इस आंदोलन के विशिष्ट चरित्र ने इसे इस हद तक प्रत्यास्थ्य बनाया कि एक तरह के वैचारिक प्रभुत्व का स्थानांतरण दूसरे में धीरे–धीरे हो जाए तथा एक तरह का नेतृत्व धीरे–धीरे दूसरे के लिए जगह बना दें। यही कारण था कि उग्र परिवर्तनवादी भी इसमें शामिल हो सकता था। समाजवादियों ने कांग्रेस में शामिल होना इसलिए आवश्यक नहीं समझा क्योंकि यह एक समाजवादी पार्टी थी बल्कि इसलिए कि इसे समाजवादी रूझान की ओर परिवर्तित एवं निर्देशित किया जा सकता था।

बुर्जुआई विचारधारा ने कांग्रेस में पहले से ही जगह बना ली थी और यह 1917 तक शक्तिशाली भी रहा। लेकिन यह न तो कोई ठोस रूप ले सका न ही इसे वर्ग आधारित संरचना में ही ढाला जा सका। इसका प्रभुत्व इसलिए भी रहा क्योंकि विकास के लिए कोई वैकल्पिक मार्ग सुलभ नहीं था। बुर्जुआई प्रभुत्व का मतलब यह भी नहीं बल्कि इनकी प्रतिबद्धता पूंजीपतियों या पूंजीवादियों के प्रति थी। एक बार समाजवादी प्रभाव उभरा तो इसे किसी प्रकार की मजबूत चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा।

गांधी की महत्वपूर्ण स्थिति एवं उनके विचारों ने भी कांग्रेस समाजवादी अभिमुखन में सहायता ही प्रदान की। गांधी को यद्यपि मार्क्सवादी भाषा में समाजवादी नहीं कहा जा सकता लेकिन वे भी बुनियादी सामाजिक स्थितियों में बदलाव के पक्षधर थे। यद्यपि वे ये बदलाव वर्ग संघर्ष के बिना ही लाना चाहते थे लेकिन सामाजिक समस्याओं के प्रति उनके सहयोगों ने समाजवादी विचारधारा को पैठ बनाने के लिए जगह खुली छोड़ दी थी। यही वह बिन्दु था जहां समाजवादियों एवं गांधी के बीच सहयोग के लिए जगह खुली थी। इसके अलावा, दक्षिणपंथी राष्ट्रवादियों का रूख भी सुधारक ही रहा। वे पश्चिमी संदर्भ में रूढ़िवादी नहीं थे। वे हर उस सामाजिक बदलाव के कार्यक्रम को समर्थन देने के लिए उस हद तक तैयार थे जहां वह गांधीवादी विचारों के परिसीमन का अतिक्रमण न करता हो। वे नेहरू जैसे समाजवादियों से सहयोग के लिए भी तैयार थे। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं जिनकी कोई स्पष्ट प्रतिबद्धता समाजवाद के प्रति नहीं थी वो भी इस ओर धीरे–धीरे झुक रहे थे। यद्यपि उन्होंने दक्षिणपंथी एवं गांधीवादी विचारधारा के अन्तर्गत काम किया था लेकिन उनका झुकाव समाजवाद की ओर बढ़ रहा था।

अध्ययन क्षेत्र का उद्देश्य

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान विभिन्न विचारधाराओं ने जनमानस एवं अंग्रेजी सरकार को प्रभावित किया। इसमें समाजवाद की धारा ने आंदोलन को त्वरित गति के साथ–साथ जनता में अधिकार, मूल्यों, राष्ट्र स्वतंत्रता, समानता जैसे विचारों को बल मिला। इसी जागरूकता का ही परिणाम यह भी रहा कि यह धारा कांग्रेस का भी अंग बन गयी जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन में जान फूंकी, इसी आधार पर इसका अध्ययन प्रासंगिक है।

समाजवादी विचारधारा एवं कार्यक्रम

समाजवादी विचारधारा के मूल में था– साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष और समाजवादी भारत का स्वप्न। इसने उनके द्विघात्मक कार्यक्रम की पूर्वपीठिका प्रस्तुत की–पहला कि राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा का हिस्सा बना– कांग्रेस के नेतृत्व में, ताकि ब्रिटिशों से भारत को आजादी हासिल हो सके तथा दूसरा समाजवादी भारत का निर्माण। उन्होंने वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को स्वीकार किया– वे वर्गविहिन समाज की रचना, पूंजीवाद एवं जमींदारी की समाप्ति व छोटे–छोटे अधिराज्यों की समाप्ति में विश्वास रखते थे क्योंकि यह सब शोषण कारक शक्तियां थीं।[1]

स्वतंत्रता का अर्थ सिर्फ ब्रिटिश अधिपत्य से ही छुटकारा नहीं था बल्कि शोषितों एवं पीड़ितों को सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न से मुक्ति देना था। किसानों एवं मजदूरों को संगठित करना उनके कार्यक्रम का महत्वपूर्ण भाग था। वे किसानों एवं मजदूरों को राष्ट्रवादी आंदोलन की मुख्यधारा से जोड़ना चाहते थे। उनका लक्ष्य इन सबकी सहानुभूति राष्ट्रीय आंदोलन को दिलाना था ताकि राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक रूप दिया जा सके। वे राजकीय योजनाओं द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव में यकीन रखते थे। उनका यह भी मानना था कि योजना निर्माण की प्रक्रिया राज्य के हाथों में ही होनी चाहिए। वे उत्पादन के साधनों का उत्पादन, वितरण एवं विनिमय तीनों स्तरों पर समाजीकरण करने के पक्ष में थे।

वे किसानों एवं मजदूर समर्थक नीतियों एवं कार्यक्रमों के पक्षधर थे– जैसे मजदूरों को श्रम संघ बनाने का अधिकार हो, उनके लिए रोजगार बोझ, काम के घंटों का निश्चित किया जाना। किसानों के संबंध में जमींदारी का उन्मूलन, भूमिकरों को कम किया जाना, सामंती लगानों की समाप्ति आदि के वे हिमायती थे।[2]

वैचारिक रूप से वे फासीवादी विरोधी थे तथा हर उन ताकतों का विरोध करते थे जो मानवाधिकारों, प्रजातांत्रिक मूल्यों तथा सामाजिक समानता की विरोधी थी। वे साम्राज्यवाद विरोधी थे तथा उन्होंने युद्ध विरोधी विदेश नीति को अपनाया। उनके अनुसार साम्राज्यवाद नागरिक अधिकारों का हनन करने वाली, शोषण करने वाली तथा समाजवाद के मौलिक सिद्धान्तों का विरोध करने वाली ताकत थी।[3]

समाजवादी धारा का विकास

समाजवाद का प्रादुर्भाव कांग्रेस के अंतर्गत ही हुआ। कांग्रेस के अन्दर इसकी अभिव्यक्ति 1920 के दशक के अंत से कांग्रेस के अन्दर बुर्जुआई विचारधारात्मक प्रभुत्व की नेहरू, सुभाष, छोटे–छोटे समाजवादी समूहों और समाजवादी मानसिकता वाले व्यक्ति की ओर से चुनौती दी जाने लगी। 1933–36 के दौरान नेहरू ने अपने वक्तव्यों एवं लेखों से समाजवादी विचारधारा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दूसरी ओर सविनय अवज्ञा आंदोलन की समाप्ति तथा ढुलमुल संसदीय राजनीति के कारण युवा वर्ग भी समाजवादी आंदोलन से जुड़ने लगे क्योंकि इनकी गांधी के रचनात्मक कार्य में भी कोई दिलचस्पी नहीं थी। इस तरह लगभग सभी युवा बुद्धिजीवी किसी न किसी कारणवश समाजवादी आंदोलन से जुड़ने लगे साथ–साथ उभरता हुआ किसान और मजदूर आंदोलन भी धीरे–धीरे वामपंथी आंदोलन से जुड़ने लगा।[4]

1935 के बाद समाजवादी नेता कांग्रेस के सदस्य बने। नेहरू ने पूरे देश का दौरा किया तथा समाजवादी विचारधारा का प्रचार–प्रसार किया। कांग्रेस पर भी समाजवाद का प्रभाव का स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी। इसकी अभिव्यक्ति 1931 के करांची प्रस्ताव, नेहरू का लखनऊ अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण, 1936 के फैजपुर अधिवेशन में क्रांतिकारी कार्यक्रम को अपनाया जाना, 1937 के चुनावी घोषणापत्र, राष्ट्रीय योजना समिति का गठन, युद्ध एवं फासीवाद के विरूद्ध कांग्रेस का विचार तथा 1937 में गठित कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों द्वारा प्रगतिशील कृषि विधेयकों को अपनाया जाना इत्यादि में दिखती है। वास्तव में कांग्रेस के अंदर समाजवादी, विचारधारा को लाने का मुख्य श्रेय नेहरू को है, इन्होंने मार्क्स के समाजवादी विचारधारा से प्रभावित होकर समानता को भारतीय समाज के आधार के रूप में स्थापित करने की कोशिश की।[5]

परन्तु कांग्रेस के अंतर्गत ही प्रजातंत्रीय समाजवादी में विश्वास करने वाले ऐसे भी लोग थे जो समाजवादी विचारधारा के प्रसार हेतु कांग्रेस से पृथक होना चाहते थे। 1932 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के स्थगित होने पर कांग्रेस के कुछ सदस्यों का झुकाव मार्क्सवाद की ओर होने लगा। इन्होंने अनेक अवसरों पर गांधीजी के नीति में अविश्वास प्रकट किया तथा 1934 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी का गठन किया। परन्तु यह दल न तो कांग्रेस की सहानुभूति प्राप्त कर सका और न ही साम्यवादियों का। यद्यपि इस दल ने कई राष्ट्रीय हित के कार्य किए जैसे हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल, आर्थिक हितों के समानता पर बल, 1935 के भारत कानून का विरोध, 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन को सहयोग एवं समर्थन, मुस्लिम लीग से समझौता तथा भारत विभाजन का विरोध इत्यादि।[6]

लेकिन इस सबके बावजूद समाजवादी राष्ट्रीय आंदोलन पर वैचारिक प्रभुत्व बनाने में सफल रहे। इस प्रकार भारतीय राजनीति में स्वतंत्रता से पहले वामपंथी विचारधारा और आंदोलन का प्रभाव उत्पन्न हुआ और विकसित भी हुआ। परंतु भारत के राजनीति आंदोलन में उनका प्रभाव सीमित रहा। फिर भी मजदूर आंदोलनों को संगठित करने, भारत में समाजवादी विचारधारा की ओर ले जाने तथा भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग का ध्यान आर्थिक और सामाजिक न्याय की ओर आकर्षित करने में उनकी योगदान निःसंदेह सराहनीय है।[7]

नागरिक अवज्ञा आंदोलन की विफलता और प्रथम गोलमेज सम्मेलन की असफल समाप्ति के पश्चात भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का करांची अधिवेशन (1931) आयोजित हुआ। इसमें मौलिक अधिकारों पर एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसे कांग्रेसी क्रांतिकारियों को खुश करने के प्रयास के रूप में देखा गया। 1934 में आंदोलन के पूर्णतया विफल हो जाने के पश्चात् जनता में आम कुंठा की भावना जागृत हुई। जब 1934 में पुनर्जीवित हुई स्वराज्य पार्टी ने चुनावी राजनीति की दिशा में कदम बढ़ाने का निर्णय लिया और अनेकों क्षेत्रीय दल और समूह ने चुनावों की तैयारी शुरू की, गांधीवादी नेतृत्व के समझौतावादी राजनीति के विरोध में कांग्रेस सोशलिष्ट पार्टी का उदय हुआ। 1930 में मार्क्सवादी समाजवाद में दीक्षित हो अपनी शिक्षा समाप्त कर संयुक्त राज्य अमेरीका से स्वदेश लौटे जयप्रकाश नारायण ने आचार्य नरेन्द्र देव संयुक्त प्रांत के प्रतिष्ठित शिक्षाविद के साथ मिलकर कांग्रेसजनों, जैसे युसुफ मेहर अली, अच्युत पटवर्धन, राममनोहर लोहिया, अशोक मेहता और एम.आर. मसानी के समूह को संगठित किया।[8]

यद्यपि कांग्रेस सोशलिष्ट पार्टी के संविधान ने ब्रिटिश साम्राज्य से पृथकता के अर्थ में पूर्ण स्वराज की प्राप्ति और एक समाजवादी समाज की स्थापना को दल का मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया था इसके सारे प्रमुख सदस्यों को समाजवादी समाज का विचार समान रूप से पसंद नहीं आया। व्यक्तिगत सदस्यों की आर्थिक दृष्टि से व्यापक असमानता थी। कोई मार्क्सवादी सिद्धान्त में विश्वास रखते थे तो किन्हीं को स्वतंत्र उद्यम का सिद्धान्त प्रिय था। इसके बावजूद उनमें वास्तविक जोतदार के हक में कृषि सुधारों और कारखाना मजदूरों के हकों के प्रति आम सहति थी। इस आम सहमति के कारण कांग्रेस सोशलिष्ट पार्टी और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के मध्य 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध में सहयोग की पर्याप्त भावना दृष्टिगत होती है।[9]

1934 में कांग्रेस सोशिलष्ट पार्टी की स्थापना हुई। साम्यवादियों ने दल के साथ तालमेल स्थापित करते हुए भारती संख्या में इसकी सदस्यता ग्रहण की। चूंकि कांग्रेस सोशलिष्ट पार्टी कांग्रेस पार्टी का ही एक खंड था अनेक साम्यवादियों ने दोनों दलों में प्रमुख स्थान ग्रहण किए। कांग्रेस के त्रिपुरा अधिवेशन (1939) के आते–आते दल के अंदर ही सुभाषचन्द्र बोस के व्यक्तित्व के इर्द–गिर्द एक वामपंथी समूह का निर्माण होता चला गया। किन्तु जब बोस ने खुलकर गांधी के नेतृत्व को चुनौती दी तो कांग्रेस सोशलिष्ट पार्टी ने तटस्थ रूख अख्तियार कर लिया और साम्यवादियों ने गांधीजी का समर्थन दिया। बोस ने कांग्रेस के अंतर्गत ही फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना कर डाली। अगस्त 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान भाकपा–कांग्रेसी तालमेल बिखर गया।[10]

नेहरू और बोस की परम्परा अनेक क्रांतिकारी कांग्रेस जनों में परिलक्षित हुई जिनकी समाजवादी खेमे के प्रति सहानुभूति सुअस्पष्ट थी। इनमें प्रमुख थे उत्तर प्रदेश के संपूर्णानंद, रफी अहमद किदवई और शिब्बन लाल सक्सेना जिन्होंने अपने संबंध कांग्रेस से कभी विच्छेद नहीं किए किन्तु सदैव शोषित के शक्तिशाली प्रवक्ता बने रहे। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान द्वैधता ने भारत में निम्नांकित रूप ग्रहण किया। अहिंसा उपासक कांग्रेस ने पहले तो बर्तानवी युद्ध प्रयासों में सहयोग करने से इंकार कर दिया, किन्तु जब वास्तव में युद्ध आरम्भ हुआ तो यह सर्शत समर्थन देने को तथ्यार हो गया। कांग्रेस सोशलिस्ट आरंभ से युद्ध प्रयासों में भाग लेने के सर्वथा विरूद्ध थे, किंतु बाद में चलकर कांग्रेस के पद चिन्ह पर चलना स्वीकार कर लिया। फॉरवर्ड ब्लॉक ब्रिटेन के साथ किसी प्रकार के सहयोग के सर्वथा विरूद्ध था। बोस ने आजाद हिंद फौज के लिए जापानियों से समर्थन मांगा और प्राप्त किया।

निष्कर्ष

चूंकि राष्ट्रीय आंदोलन एक बहुवर्गीय आंदोलन था इसलिए यह नाम के लिए या सच्चाई में भी किसी एक वर्ग के कार्यक्रम को ही अपनाकर तुष्ट नहीं हो सकता था। अतः आंदोलन में किसी खास वर्ग का प्रभुत्व नहीं प्रतीत होता है। अतः वैचारिक परिवर्तन में समाजवादी प्रभावों को महसूस किया जा सकता है। अतः आंदोलन का यह झुकाव परिवर्तनवादी दिशा में हो गया। इसका प्रभाव स्वरूप यह बिल्कुल नहीं हुआ कि कांग्रेस मजदूरों और किसानों की पार्टी हो गई ओर न ही नेतृत्व का परिवर्तित किया गया। इसने कांग्रेस को एक समाजवादी झुकाव प्रदान किया। 1936 एवं 1945–46 के चुनावी घोषणापत्रों में भी समाजवादी प्रभाव स्पष्ट है। 1937 में कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने समाजवादी विचारों के अनुरूप कई विधेयक पास किये। किसानों एवं मजदूरों की स्थिति सुधारने के प्रयास किये गये। 1938 में राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया गया– नेहरू अध्यक्ष बने। आधुनिक भारत में योजनाबद्ध विकास की तरफ यह पहला कदम था। 1945 में कांग्रेस कार्य समिति ने जमींदारी उन्मूलन के अधिकारिक तौर पर स्वीकार किया। कृषक विचौलियों को हटाये जाने का कार्यक्रम स्वीकार किया।

अंत टिप्पणी

1. *चन्द्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, केवलरी लाइन, दिल्ली, 2011, पृ. 292*
2. *आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन, एस. चन्द पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010, पृ. 343*
3. *चन्द्र, विपिन, एन.सी.ई.आर.टी. आधुनिक भारत, 2003, पृ. 195*
4. *बंद्योपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंटल लॉगमैन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 305*
5. *दुर्गादास, इण्डिया फ्रॉम कर्जन टू नेहरू एण्ड ऑफ्टर, क्रिसेट प्रेस, लंदन, 1969, पृ. 210*
6. *सिंह, मंजू, आधुनिक भारत का इतिहास, यूनिवर्सल बुक सेल्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 270*
7. *चन्द्र, विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ऑरियंटल ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2009, पृ. 309*
8. *चांद, एस.एम., स्वाधीनता संघर्ष और साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रीय एकता प्रकाशन, ब्यावर, 1993, पृ. 215*
9. *इन्दिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय पत्रिका, 2012, पृ. 17*
10. *पाण्डेय, धनपति, आधुनिक भारत का इतिहास खण्ड–2, मोतीलाल बनारसीदास, 1995, पृ. 298*